तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक १ : मई १९८२

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON

Telephone: 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : **Bhadhoi**
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक १

मई १९८२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

...वीर ने कहा था ५

...रूपम् १०

...क भव्य पार्श्वनाथ मूर्त्ति १७

...काल द्रव्य २०

...लाका पुरुष चरित्र २२

...ाएँ : कहाँ/क्या ३१

गुप्तकालीन पार्श्वनाथ मूर्त्ति, श्री गोपीकृष्ण कानोड़िया संग्रहालय, पटना

महावीर ने कहा था

यात्रा सम्बन्धी

पाथेय नहीं लेकर
जो दीर्घ पथ अतिक्रम करता है
वह क्षुधा तृष्णा से कातर होकर
पथ पर जिस प्रकार तकलीफ उठाता है;

धर्माचरण न कर
जो परलोक यात्रा करता है
आधि-व्याधि से पीड़ित होकर
पथ पर वह भी उसी प्रकार तकलीफ उठाता है।

पाथेय लेकर
जो दीर्घ पथ अतिक्रम करता है
क्षुधा-तृष्णा से कातर न होकर
वह पथ पर जिस प्रकार प्रसन्न रहता है;

धर्माचरण कर
जो परलोक की यात्रा करता है
सामान्य कर्म अवशेष रहने से
वह भी पथ पर उसी प्रकार प्रसन्न रहता है।

क्रोध, मान, माया व लोभ
ये चारों ही कषाय
पापों की वृद्धि करते हैं;
अतः आत्म हितेच्छु
इनका सदा परिहार करें।

क्रोध प्रीति को नष्ट करता है,
मान विनय को,
माया मैत्री को नष्ट करती है,
लोभ हर वस्तु को।

उपशम से क्रोध जीतो,
मृदुता से मान,
सरलता से माया जीतो,
सन्तोष से लोभ ।

क्रोध, मान, माया व लोभ
ये चारों ही कषाय
आत्मा को मलीन करते हैं ;
ऐसा ज्ञात कर
अर्हत् और महर्षिगण
पाप कर्म नहीं करते
एवं अन्य को भी पाप कर्म में
नियुक्त नहीं करते ।

अनिग्रहित क्रोध और मान
व प्रवर्द्धमान माया और लोभ
ये चारों मलिन कषाय
पुनर्जन्म रूपी वृक्ष के
मूल को सिंचन करते हैं ।

भगवन्,
क्रोध विजय से क्या लाभ होता है ?
क्रोध विजय से क्षान्ति मिलती है,
क्रोध वर्द्धक नूतन कर्म का आगमन नहीं होता
एवं पूर्वबद्ध क्रोध कर्म क्षय होता है ।

भगवन्,
मान विजय से क्या लाभ होता है ?
मान विजय से मृदुता मिलती है,
मान वर्द्धक नूतन कर्म का आगमन नहीं होता
और पूर्वबद्ध मान कर्म क्षय होता है ।

भगवन्,
माया विजय से क्या लाभ होता है ?
माया विजय से सरलता मिलती है,
माया वर्द्धक नूतन कर्म का आगमन नहीं होता
एवं पूर्वबद्ध कर्म क्षय होता है ।

भगवन्,
लोभ जीतने से क्या लाभ होता है ?
लोभ जीतने से सन्तोष मिलता है,
लोभ बर्द्धक नूतन कर्म का आगमन नहीं होता
एवं पूर्व बद्ध कर्म क्षय होता है ।

बाधा सम्बन्धी

काम परिहार सत्य ही कठिन है,
जो अधीर होते हैं उनके लिए
ऐसा करना सम्भव नहीं ।
किन्तु जो धीर हैं
वे वणिकों की भाँति
संसार समुद्र का अतिक्रम करते हैं ।

यह देह ही नौका है,
और तुम नाविक हो,
यह संसार ही समुद्र है
जिसे महर्षिगण अतिक्रम करते हैं ।

यह बात समझो, समझना ही चाहिए—
बाद में बोधिलाभ करूँगा ऐसा नहीं होता है ।
जो दिन चला जाता है वह नहीं लौटता,
फिर अगले जन्म में मनुष्य ही बनोगे
यह भी तो निश्चित नहीं है ।

संसार में शत्रु और मित्र
सबके प्रति समभाव रखना सहज नहीं,
सहज नहीं आजीवन
जीव हत्या से भी विरत रहना ।

सहज नहीं
भूलकर भी झूठ नहीं बोलना,
सहज नहीं
प्रिय और सत्य बोलना ।

सहज नहीं
काम भोग के बाद

काम भोग से विरत रहना
और संयम पालन करना ।

सहज नहीं
परिग्रहमय संसार में
सन्तोष प्राप्त कर सन्तुष्ट रहना,
कारण समस्त पृथ्वी का आधिपत्य भी
किसी को सन्तुष्ट नहीं कर सकता ।

फिर भी मैंने सुना है
और जाना भी है
बन्धन से मुक्त होना
तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है ।

पथ सम्बन्धी

अनिश्चित अशाश्वत
दुःखमय इस संसार के
दुःख और यातना से
मैं कैसे मुक्ति पाऊँगा ?

ज्ञान परिशुद्ध करो,
अज्ञान और मोह का त्याग करो,
तभी तुम पा सकोगे
वह मोक्ष पद
जहाँ है केवल आनन्द ही आनन्द ।

सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र ही
उस मोक्ष मार्ग का पथ है ।

मोक्ष मार्ग का पथ है
वृद्ध व आचार्यों की सेवा,
दुर्जन संसर्ग का परित्याग,
शास्त्र वाक्यों का गहन अध्ययन
और गहन स्वाध्याय ।

तुम जिनसे
शिक्षा प्राप्त करते हो

उनके प्रति विनयवान् बनो,
अंजलिबद्ध और नतमस्तक होकर
उनके प्रति श्रद्धावान् बनो,
मन वचन काया से
उनका सत्कार करो।

वही सुशिष्य है
जो क्षिप्र है,
जिसे कहने की आवश्यकता नहीं होती,
बिना कहे ही
जो आचार्य के मनोभावों को
समझ सकता है
और वैसा ही आचरण करता है।

आचार्य के कथन और मनोभावों को
समझने की चेष्टा करो,
जो उचित है वही कहो
फिर
जीवन में उसका अनुसरण करो।

राग और द्वेष
मान और माया के वशवर्त्ती होकर
जो आचार्य के प्रति
श्रद्धा नहीं रखता
जीवन में
वह कभी उन्नति नहीं कर सकता।
उसका ज्ञान
बांस के फल-सा है
वह अपने ही विनाश का कारण बनता है।

जो अविनयी है
वह दुर्गति प्राप्त करता है,
जो विनयी है
वह प्रगति करता है
जो इस बात को समझता है
वही सचमुच शिक्षा प्राप्त करता है।

[क्रमशः

रूपम्

[सराक संस्कृति मूलक कथानक]

श्री युधिष्ठिर माजी

तो क्या आप रूपम् को पहचानते थे ?

भला उसे कौन नहीं पहचानता ? रूपमती, रूपम् ! सीमा नहीं थी उसके रूप की। सुवर्णरेखा के जल में स्नान कर भींगे केशों से जब वह घर लौटती तो उसका रूप जैसे चू पड़ता। वह लड़की नहीं मानो सुवर्णरेखा से निकली सुवर्ण कन्या थी।

सुवर्णरेखा के दोनों ओर था घना वन। तरु-पत्रों की मर्मर ध्वनि से दिनरात ध्वनित। जितना ही प्राचीन उतना ही गहन। ऊँचे-ऊँचे शाल और महुआ के वृक्षों की देह पर थी उम्र की स्पष्ट छाप। शान्त था वन-तल। समीर में थी महुए की गन्ध। झरे पत्रों से आच्छादित था धरती का तन।

उस दिन उसी राह से घर लौट रही थी रूपम्। सम्मुख की सुन्दर वन-स्थली रूपम् की देह पर जैसे झुकी जा रही थी। भींगे केश और भींगी साड़ी से झरते हुए जल को पान करने के लिए तृषित धरती का वक्ष फैला जा रहा था। पद्चाप से खड़-खड़ करते पथ पर तृण-पत्र मानो सिहरित हो रहे थे। रूपम् के लावण्यमय अंगों से लिपटी साड़ी जैसे उसके अंगों में ही खोयी जा रही थी।

इसी पथ पर उसदिन सर्वप्रथम उसे देखा था राजा मानसिंह ने। जो कि धलभूम के ख्यातिप्राप्त राजा थे। मानसिंह सोच भी नहीं सकते थे कि उनके राज्य में रूपम्-सी रूपवती लड़की भी है। वे घोड़े से नीचे उतरे। रूपम् के निकट जाकर मुस्कुराते हुए बोले—"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"रूपम्"। जवाब दिया रूपम् ने।

"वाह ! बड़ा सुन्दर है नाम तो ! लगता है तुम सराक कन्या हो ?"

"हाँ।"

"तुम्हारे पिता जी का नाम ?"

"मीरम्।"

"मीरम् !"

बहुत परिचित मनुष्य हैं भीरम्। मानसिंह उन्हें खूब अच्छी तरह जानते हैं। साथ ही सम्माननीय भी हैं वे। मानसिंह ने फिर खूब गौर से देखा रूपम् को। रूपम् हँसी किन्तु बोली कुछ नहीं। हँसती-हँसती ही आगे बढ़ गयी।

रूपम् के जाते ही राजा की दृष्टि पड़ी सुवर्णरेखा के तट पर। दूर से ही दिखायी पड़ रही थी सुन्दरी सुवर्णरेखा। तट के शाल महुआ के अविन्यस्त वृक्ष जैसे झुके जा रहे थे नदी की लहरों पर। पेड़-पौधों के मध्य से दिखायी पड़ रहा था सरिता सुन्दरी का रूपहला वक्ष स्थल। मन्द-मन्द प्रवाहित था महुए का गन्ध भरा समीर। जिसके वेग में नदी का वह सुन्दर वक्ष कहीं-कहीं अनावृत्त-सा हो जाता था।

प्रकृति के इस मनोहर वातावरण में मानसिंह उद्दीप्त हो गए। रूपम् को देखने की आकांक्षा प्रबल हो उठी। उन्होंने तुरन्त घोड़े को पेड़ लगायी। किन्तु रूपम् कहीं दिखाई नहीं पड़ी। आखिर वे भीरम् के घर की ओर रवाना हुए। जाते ही मिली लास्यमयी किशोरी रूपम्। उसकी खुली केश-राशि रूपान्तरित हो गयी थी जूड़े में। जूड़े के चारों ओर लगे फूल छोटे मुकुट से प्रतीत होते थे। उसके इस रूप को देखकर और अधिक मुग्ध हो गए राजा मानसिंह। कैसे मुग्ध नहीं होते? अठारह वर्षीया उस सुन्दरी को देखकर भला कौन मुग्ध हुए बिना रह सकता था। राजा मानसिंह ने रूपम् से बातचीत प्रारम्भ की। रूपम् भी निःसंकोच उनसे बातें करने लगी। तभी आ गए रूपम् के पिता भीरम्। बड़े प्रसन्न हुए वे राजा मानसिंह को देखकर। अब तीनों में वार्तालाप होने लगा।

किन्तु राजा मानसिंह जो कुछ कहना चाहते थे वह कह नहीं सके। घर के सामने ही घोड़ा खड़ा था। उन्होंने उनसे विदा माँगी। भीरम् ने राजा की शुभ यात्रा की कामना की।

रूपम् घोड़े तक राजा को पहुँचाने गयी। राजा घोड़े पर चढ़कर अदृश्य हो गए। जाते समय रूपम् से कह गए—"फिर मिलना होगा।"

राजा मानसिंह के जाने के कुछ क्षणों बाद ही अचानक मिला सुवर्णम्। सुवर्णम् सराक था। एक अच्छा मूर्तिकार, एक उत्तम शिल्पी। सुवर्णम् के कोमल हाथों से पाषाणों में भी जीवंत हो रहे थे महान् तीर्थंकर महावीर। शायद सुवर्णम् पाषाण में सोए हुए अहिंसा के महान् साधक को जाग्रत करना चाहता था।

रूपम् देखते ही बोली—"जानते हो आज हमारे घर राजा मानसिंह आए थे।"

"क्या अपराध कर डाला था तुम लोगों ने ?"

"तो क्या राजा का आगमन अपराध करने पर ही होता है ?"

"और क्या ! दुर्भाग्य के बिना उनका दर्शन नहीं होता।"

"किन्तु राजा मानसिंह तो कह रहे थे...."

"क्या कह रहे थे ?"

"यही कि मैं उन्हें बहुत अच्छी लगी।"

"तब तो फिर माला गूँथ कर उनकी प्रतीक्षा करो।"

"तो क्या ऐसी आवश्यकता पड़ने पर तुम मुझे माला गूँथ दोगे ?"

"गूँथ दूँगा, किन्तु वह माला होगी पाषाण की। क्या तुम नहीं जानती मेरा कार्य पाषाण से ही जुड़ा हुआ है ?"

ऐसा कहकर आगे बढ़ गया सुवर्णम्। रूपम् बोली—"सुनो।"

"देखो रूपम् ! अभी सुनने का समय मेरे पास नहीं है। मुझे कार्य पर जाने दो।"

विहँस पड़ी रूपम्। सोचने लगी—पाषाणों से क्या करता है यह। लगता है पाषाणों को जीवंत करेगा। खिन्न मन से घर लौट गयी रूपम्।

जिस दिन से देखा था राजा मानसिंह ने रूपम् को उसी दिन से ही उनके हृदय में एक विशिष्ट सुखानुभूति जाग पड़ी थी। जितनी ही दीर्घ थी वह अनुभूति उतनी ही थी गंभीर।

उस दिन भी स्नान कर लौट रही थी रूपम्। राह पर झुके हुए तरुपल्लव जैसे उसके अरूण कपोलों को चूम रहे थे। हवा बोझिल हो रही थी महुआ के फूलों की मदिर गन्ध से। अचानक उसे लगा न जाने कौन उसका आँचल खींच रहा है। मुड़ते ही पाया राजा मानसिंह को। उसका हृदय धड़कने लगा। समस्त देह भय से इस भाँति सिहरित हो उठी जैसी न कभी दुःख में हुई न सुख में। उसे सुवर्णम् स्मरण हो आया। उसने तो कभी भी ऐसी हरकत नहीं की। राजा रूपम् के चिबुक का स्पर्श करते हुए बोले—"रूपम्।"

रूपम् भीगी साड़ी को ठीक करते हुए बोली—"कुछ कहना है ?"

"हाँ।"

"तब चलिए मेरे घर। पथ पर थोड़े ही बात हो सकती है ?"

"क्यों नहीं हो सकती ? पथ पर ही तो अधिक सुयोग रहता है ?"

कठोर हो गयी रूपम् । उसने रूक्ष शब्दों में कहा—"जहाँ सुयोग होता है वहाँ दुर्योग का प्रश्न भी तो जुड़ा रहता है। रूपम् ऐसी जगह बात नहीं करती।"

"रूपम् बात करेगी यही सोचकर मैं खड़ा हूँ।"

रूपम् का कोमल मुख और कठोर हो गया। उसने सख्त स्वर में कहा—"सुवर्णम् निर्मित्त पाषाण मूर्त्ति के मुख में क्या शब्द प्रस्फुटित कर सकते हैं राजा मानसिंह ? नहीं कर सकते।" कहती हुई पथ पर अग्रसर हो गयी रूपम्।

हताश मानसिंह घोड़े पर चढ़े और ऐड़ लगायी। घोड़ा प्राणपण से दौड़ पड़ा राजमहल की ओर।

दूर खड़े सुवर्णम् ने सब कुछ देख लिया था। देखा—राजा मानसिंह पेड़-पौधों की आड़ में खड़े होकर रूपम् से बातचीत कर रहे हैं। रूपम् ने भी उसी समय सुवर्णम् को देख लिया था।

इसीलिए घर आकर रूपम् ने सोचा सुवर्णम् स्वयं ही इस विषय में कुछ कहेगा किन्तु सुवर्णम् ने कुछ नहीं कहा। अतः विक्षुण्ण मन से रूपम् ने ही कहा—"तुम तो खड़े-खड़े मजा ले रहे थे यदि कोई खराब घटना घट जाती तो ?"

फीकी हँसी हँसते हुए सुवर्णम् बोला—"घटने लायक कुछ हुआ था क्या ?"

"होने में देर कितनी लगती है ?"

"तभी तो मैंने कहा था राजाओं के साथ आत्मीयता अच्छी नहीं होती।" कहता हुआ सुवर्णम् अपने काम पर चला गया।

रूपम् ने पीछे से पुकारा—"सुनो।"

किन्तु वह आवाज सुवर्णम् के कानों में नहीं पहुँची।

दूसरे दिन भी सुवर्णरेखा के तट पर पुनः मिले राजा मानसिंह। घोड़े से उतरकर उन्होंने पुकारा—"रूपम् !"

रूपम् ने पीछे मुड़कर देखा। बोली—"कहा था न, रूपम् रास्ते में खड़ी होकर पर पुरुष से बात नहीं करती।"

"पर पुरुष क्यों कह रही हो ? मैं राजा हूँ, हो सकता है तुम एक दिन मेरी रानी बन जाओ।"

"सराक कन्या भिन्न जाति वाले के घर कभी रानी बनकर नहीं जाती।"

"राजा मान भिन्न जाति का होने पर भी राजा है।"

"मैंने कब अस्वीकार किया। फिर भी आशा करती हूँ राजा मान अपने सम्मान को अक्षुण्ण रखेंगे।"

तभी हठात् न जाने कैसे राजा मानसिंह ने रूपम् को कसकर पकड़ा और जबर्दस्ती घोड़े पर बैठाकर घोड़ा राजमहल की ओर दौड़ा दिया।

उन दिनों उनकी प्रजा में सराकों का बड़ा नाम था। एक समय उनके पूर्वजों ने मानभूम और सिंहभूम पर शासन किया था।

अतः राजा मानसिंह के इस दुर्व्यवहार से वे क्षिप्त हो उठे। प्रतिवाद कर अनेक तो राज्य छोड़कर ही जाने लगे। भीरम् सराक आए राजा मानसिंह के पास। उन्होंने लड़की को लौटाने के लिए कहा। राजा मानसिंह भीरम् सराक का स्वागत करते हुए बोले—"मैं आपकी कन्या से विवाह करना चाहता हूँ।"

"यह नहीं हो सकता राजन्।"

"क्यों नहीं हो सकता?"

"भीरम् सराक किसी अन्य जाति को अपनी कन्या नहीं दे सकता।"

"अन्य जाति का हूँ तो क्या, हूँ तो आखिर राजा।"

कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला अतः उन्होंने पुनः प्रश्न किया—"तो क्या यह आपका आखिरी निर्णय है?"

"हाँ राजन्!"

"तो फिर समझिए मैं रूपम् को नहीं लौटाऊँगा।"

खाली हाथों घर लौटे भीरम्। सराक जाती के सभी लोगों ने इसका कड़ा विरोध किया। वे दल के दल राजा मानसिंह के राज्य धलभूम को छोड़कर पंचकोट राज्य में जाने लगे। ग्राम खाली होने लगा। जनपद शून्य हो गया। अन्ततः सराक प्रजा के राज्य-त्याग को रोकने के लिए राजा मानसिंह रूपम् को लौटाने के लिए बाध्य हुए।

मुक्त होते ही रूपम् सुवर्णम् के पास पहुँची। सुवर्णम् सुवर्णरेखा के तट पर तल्लीन बना एक पाषाण खण्ड पर छेनी चला रहा था। रूपम् ने पीछे से पुकारा—"सुवर्णम्!"

उदास दृष्टि से देखा सुवर्णम् ने। बोला—"अभी बहुत देर है। एक न एक दिन मेरे हाथों से अहिंसा धर्म के साधक पुरुष की प्राण प्रतिष्ठा होकर रहेगी।"

दाँतों से होठ काटकर रूपम् बोली—"होता रहे वह। जानते हो राजा मुझे पकड़ कर अपने राजमहल में ले गए थे? वहाँ मुझपर क्या बीती क्या तुम यह सब जानना नहीं चाहते सुवर्णम्?"

"क्या होगा जानकर।"

"एक तुम्हीं ऐसे हो जो निश्चिन्तमना बने कार्य कर रहे हो। अन्य तो सभी इसका विरोधकर भाग रहे हैं यहाँ से।"

"उनको कोई काम नहीं है इसीलिए भाग रहे हैं।"

"सुवर्णम्!"

"मुझे अभी बहुत काम करना है, तुम अब जाओ रूपम्।"

"तब ठीक है सुवर्णम्! मैं जा रही हूँ।"

रूपम् नदी के किनारे-किनारे चलने लगी। उसे पिताजी की बात स्मरण हो आयी। किन्तु अब वे वहाँ नहीं थे। विरोधी बनकर चले गए थे अन्य राज्य में। रूपम् थी एकाकी।

दूसरे दिन ही रूपम् को लोगों ने देखा सुवर्णरेखा के जल पर। सुवर्णरेखा के रूपहले वक्ष पर रूपम् की मृत देह तैर रही थी। यह बात फैल गयी पूरे धलभूम राज्य में।

एकाग्रचित्त से कार्य कर रहा था सुवर्णम्। विश्व अहिंसा के साधक की मूर्त्ति को पाषाण पर उतार रहा था वह। हठात् उसने भी सुना कि रूपम् नहीं रही। छेनी हाथ से गिर पड़ी। कल्पना का सुनहला आलोक अचानक बुझ गया। तीर्थंकर मुद्रा उसे लगी जैसे अन्धकार से आच्छादित हो गयी है। समस्त शक्ति बटोरकर भी धरती से छेनी नहीं उठा सका सुवर्णम्। रूपम् के अभाव में मानों सत्वहीन हो गया वह शिल्पी। सुवर्णरेखा के तट पर ही रह गयी वह अधूरी तीर्थंकर मूर्त्ति।

इसके पूर्व सुवर्णम् कहाँ समझ पाया था रूपम् को और कहाँ समझ पाया था स्वयं के हृदय को। राजा मान भी तो नहीं समझ पाए थे रूपम् के सत्व को। विक्षिप्त हो गया था सुवर्णम्। तभी तो जब तक वह जीवित रहा लोगों से पूछता रहा—"तो आप रूपम् को पहचानते थे?"

आज भी पूर्णिमा की चाँदनी रात में सुवर्णरेखा के दोनों ओर शाल-महुआ का वन जब मर्मरित हो उठता है तब सुवर्णम् की अविनश्वर आत्मा जैसे अस्फुट निःश्वास छोड़ने लगती है और मानों वह तीर्थंकर मूर्त्ति से ही प्रश्न करने लगती है—

"तो क्या आप रूपम् को पहचानते थे ?"

Mr. G. Coupland, I. C. S. इनके Gazetter of Manbhum District ग्रन्थ में लिखा है…"But in Manbhum District they (Saraks) say that they first settled near Dhalbhum in the estate of a certain Man Raja. They subsequently moved in a body to Panchet in consequence of an outrage contemplated by Man Raja on a girl belonging to their caste." इसी को आधार बनाकर यह कहानी रची गयी है ।

गुप्तकालीन एक भव्य पार्श्वनाथ मूर्त्ति

श्री अगर चंद नाहटा

भारतीय इतिहास में गुप्तों का शासन काल स्वर्णयुग माना जाता है। गुप्तकाल में साहित्य कला की समृद्धि खूब हुई परन्तु जैन दृष्टि से इस युग में जितनी अधिक उन्नति होनी चाहिए थी उसकी अपेक्षा कम ही हुई लगती है। इससे पहले मौर्य एवं कुषाण काल जैन दृष्टि से अधिक महत्व का विदित होता है फिर भी युग का प्रभाव जैन साहित्य, इतिहास, कला पर तो पड़ा है ही। इस सम्बन्ध में जैसी खोज जैन दृष्टि से होनी चाहिए थी वह अभी तक नहीं हो पायी। उस काल के आसपास जो भी जैनाचार्य हुए उनका समय अनिश्चित-सा है। अतः जो रचनाएँ उस काल की मानी जा सकती हैं, उस समय के जैन इतिहास के स्पष्ट नहीं होने के कारण, उन रचनाओं का काल सही निर्णित नहीं होता। कला की दृष्टि से भी देखें तो कुषाणकाल की जितनी प्रतिमाएँ मिली हैं उनमें जैन प्रतिमाओं की संख्या अधिक है। गुप्तकाल में अधिक नहीं मिली। गुप्तकाल की जैन मूर्त्तियाँ मथुरा एवं चौसा के अतिरिक्त राजगृह, विदिशा, उदयगिरि, अकोटा, कहोम, वाराणसी में मिली है। कुषाणकाल की तुलना में मथुरा में गुप्त काल में कम जैन मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हुईं। इनमें कुषाणकालीन विषय वैविध्य का अभाव है। गुप्तकाल में मथुरा में केवल जैनों की स्वतन्त्र एवं कुछ जिन चौमुखी मूर्त्तियाँ ही निर्मित हुईं। इसी के साथ लंछनों एवं यक्ष-यक्षिणी युगलों के निरूपण की परम्परा भी गुप्त युग में ही प्रारम्भ हुई यह मत डा० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी ने अपने 'जैन प्रतिमा विज्ञान' नामक शोध प्रबन्ध के पृष्ठ ४६ में व्यक्त किया है। गुप्तकाल तीसरी से छठी शदी तक माना गया है पर इसका प्रभाव ८-६वीं शदी तक था।

श्री भगवती शरण उपाध्याय का 'गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास' हिन्दी समिति, लखनऊ से सन् १६७६ में प्रकाशित हुआ था। उसमें गुप्तकालीन जैन साहित्य के विषय में केवल इतना ही लिखा है—"जैन दर्शन का अधिकतर विकास प्राकृत में हुआ। आरंभ में वह प्राकृत में लिखा गया, पीछे भी इसका विन्यास प्राकृत में हुआ पर गुप्तकाल के अवसान युग में जैनाचार्य भी संस्कृत भाषा के लाभ से वंचित न रह सके। उन्होंने उस भाषा का उपयोग किया। जैन दर्शन के प्रसंग में सिद्धसेन दिवाकर का उल्लेख किया जा चुका है।

उमास्वाति ने बाद में सूत्रों एवं भाष्य को संस्कृत शैली में लिख अपने 'तत्वार्थाधिगम सूत्र' में अपने धर्म के सिद्धान्त को बड़ी सतर्कता पूर्वक निरूपित किया। ७वीं शदी में समन्तभद्र ने 'आप्त मीमांसा' की रचना की जिस पर अकलंक ने व्याखया लिखी। ६६० ई० के लगभग रविसेन ने 'पद्म पुराण' लिखा। इसी दिशा में प्रसिद्ध जैन पुराण 'हरिवंश पुराण' ७८४ ई० में जिनसेन ने लिखा।"

ललित कला के प्रसंग में गुप्त कालीन एलोरा की जैन गुफा का ही डा० भगवती शरण ने उल्लेख मात्र किया है। उन्होंने वैदिक और बौद्ध सम्बन्धी जितना लिखा है जैन सम्बन्धी प्रायः कुछ भी नहीं लिखा। यह तो जैन विद्वानों का कर्त्तव्य है कि गुप्तकालीन जैन इतिहास पर विशेष प्रकाश डाले।

गुप्तकालीन कुछ जैनमूर्त्तियों की अबतक चर्चा होती रही है पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण गुप्तकालीन पार्श्वनाथ की मूर्त्ति का प्रायः विद्वानों और जैनों को पता नहीं है। परिषद पत्रिका के जनवरी ७४ के अंक में एक लेख चित्तरंजन प्रसाद सिन्हा का 'गुप्तकालीन पार्श्वनाथ की एक दुर्लभ मूर्त्ति' के नाम से उस मूर्त्ति के फोटो सहित प्रकाशित हुआ है। उसकी ओर भी विद्वानों का ध्यान बहुत ही कम गया है। अभी-अभी जो डा० मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी का शोध प्रबन्ध 'जैन प्रतिमा' विज्ञान के नाम से प्रकाशित हुआ है उसमें भी इस महत्वपूर्ण मूर्त्ति का उल्लेख देखने में नहीं आया। इसलिए प्रस्तुत लेख में श्री चित्तरंजन प्रसाद सिन्हा के लेख के आधार पर आवश्यक परिचय दिया जा रहा है। उन्होंने अपने लेख में जैन मूर्त्तियों की प्राचीनता का उल्लेख करने के बाद लिखा है—"जैन तीर्थंकर की यह प्रतिमा भारतीय नृत्य कला मन्दिर के संस्थापक-निर्देशक श्री हरि उप्पल जी को प्राप्त हुई थी। संप्रति यह श्री गोपीकृष्ण कानोडिया जी के व्यक्तिगत संग्रहालय, पटना में सुरक्षित है। बिहार से प्राप्त गुप्तकालीन जैन मूर्त्तियों में चौसा की छह ध्यानस्थ बैठी धातु मूर्त्तियाँ तथा राजगीर से प्राप्त नेमिनाथ की प्रस्तर मूर्त्ति तथा सोन भंडार की चौमुखी जैन मूर्त्ति विशेष उल्लेखनीय है।"

गुप्तकालीन पार्श्वनाथ की प्रस्तुत मूर्त्ति पटना में गंगा के किनारे मिली है। इस काल की पटना से प्राप्त होने वाली यह पहली प्रतिमा है। इस मूर्त्ति का विवरण देते हुए लिखा है—"प्रस्तुत मूर्त्ति में भगवान पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग आसन में ध्यान मुद्रा में खड़े हैं। इनके नेत्र अर्द्ध-निमीलित हैं और दृष्टि इनके नासाग्र भाग पर स्थित है। तीर्थंकर के मस्तक पर सप्त फण वाले सर्प ने भगवान को चरण से कुँडली बाँध अपने सातों फणों को फैलाकर छत्र की तरह तान दिया है। पार्श्वनाथ की ठुड्डी नुकीली, कान लम्बे तथा चेहरा

गोलाकार बनाया गया है। दो अन्य जैन तीर्थंकर प्रधान प्रतिमा के पैर के उभय पार्श्व में ध्यानस्थ अंजलि मुद्रा में बैठे दिखाए गए हैं। इन दोनों मूर्त्तियों के मस्तक के पीछे गोलाकार प्रभामण्डल बनाया गया है। इसकी तुलना राजगृह स्थित नेमिनाथ की प्रतिमा के नीचे उत्कीर्ण पद्मासन में बैठे दो जिन मूर्त्तियों से की जा सकती है। बैठने का ढंग, आकार-प्रकार एवं प्रभा मण्डल दिखलाने की कला में अत्यन्त साम्य है। ऐसा लगता है मानो दोनों मूर्तियाँ एक ही कलाकार की बनायी हुई है। नेमिनाथ की मूर्त्ति पर आरम्भिक गुप्तकालीन अभिलेख उत्कीर्ण है अतः पार्श्वनाथ की मूर्त्ति भी इस काल की ही मानी जाएगी। ध्यानस्थ बैठी प्रतिमा के ऊपर दोनों ओर दो और मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दाहिनी ओर की मूर्त्ति पूर्णरूप से खण्डित है केवल एक पैर की कुछ उंगलियाँ ही दिखलाई पड़ रही है। बाईं ओर की मूर्त्ति का केवल पैर और धड़ खण्डित है। कायबंध से कसी हुई धोती बड़े ही रोचक ढंग से दिखलाई गई है। इस प्रकार के धोती पहनने और चुन्नट दिखाने की कला देवगढ़, गया (बिहार) की बलराम, बासुदेव एवं एकानंसा की मूर्त्तियों में परिलक्षित होती है। ये मूर्त्तियाँ कुषाणकाल के अन्तिम भाग की है। किन्तु उपर्युक्त मूर्त्ति को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह परम्परा प्रारम्भिक गुप्तकालीन मूर्त्तियों में भी कायम रही।"

गुप्तकाल में श्वेताम्बर मूर्त्तियाँ अधिक बनीं। उन्हें वस्त्रों से विभूषित दिखाया जाता है। क्योंकि प्रस्तुत मूर्त्ति नग्न है अतः इस कारण भी इसे प्रारम्भिक गुप्तकला का उदाहरण माना जा सकता है। नासिका पर टिकी हुई मूर्त्ति की अधखुली आँखें, मुख की आध्यात्मिक कांति और होठों के करुणामय भाव गुप्तकला की विशिष्ट देन है। इसमें गुप्तकाल की संयम, सौन्दर्य तथा आन्तरिक आध्यात्मिकता पूर्णतः व्याप्त है। कुषाणकालीन भद्दापन एवं रूखापन के बदले शरीर की कोमलता एवं स्वाभाविक लोच दिखाया गया है।

यह मूर्त्ति बिहार से प्राप्त होने वाले बलुआ पत्थर की बनी है तथा अपनी उत्कृष्ट कला के कारण आरंभिक गुप्तकाल में निर्मित्त जैनधर्म की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमाओं में अन्यतम् है।

वास्तव में भारत के स्वर्णकाल कहलाने वाले गुप्त युग की जैन मूर्त्तियाँ भी बहुत ही मनोहर हैं। खेद है, इसके बाद जैनों और शिल्पियों ने मूर्त्तियों की भव्यता और कला पर इतना ध्यान नहीं रखा। इसलिए गुप्त युग के बाद मूर्त्तियाँ तो हजारों बनी पर गुप्त युग की भव्यता और श्रेष्ठता उनमें नहीं दिखाई दी।

काल द्रव्य

पूरण चंद सामसुखा

षट् द्रव्यों में काल एक द्रव्य है। बाकी जीव पुद्गलादि पांच द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं परन्तु काल को अस्तिकाय नहीं कहा इसका कारण आगे समझाया जाएगा।

काल द्रव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में विभिन्न मत है। एक मत तो यह है कि काल कल्पित द्रव्य है—इसका किसी प्रकार तात्त्विक रूप नहीं है, व्यवहार से इसे द्रव्य संज्ञा दी गई है। जीव व पुद्गल में जो पर्यायों का प्रवाह चलता है अर्थात् एक अवस्था से अवस्थान्तर प्राप्ति होती है, वही काल है। इस मत से जीव व अजीव द्रव्यों के पर्याय-परिणमन को ही उपचार से काल माना है। अर्थात् जीव व अजीव द्रव्यों की पर्यायें ही काल हैं उनसे अलग कोई काल नाम का पृथक् तत्त्व नहीं है। नवीनता, पुरानापन, ज्येष्ठता, कनिष्ठता आदि अवस्थाओं को कालजनित कहा जाता है वह भी उन द्रव्यों का पर्याय-परिणमन मात्र ही है; अर्थात् जो पर्याय पहले होती है वह पुरातन और जो पीछे होती है वह नवीन इत्यादि। इन पर्यायों का अविभाज्य अंश—जिसका बुद्धि से भी विभाग नहीं किया जा सके, उस सूक्ष्मतम् अंश को 'समय' कहते हैं। 'समय' मात्र ही काल कहा जाता है और इन समयों का एकत्रित होकर स्कन्धों में परिणमन नहीं होता, इसलिये इसे अस्तिकाय नहीं कहा जाता। इस 'समय' के बुद्धिकृत समूहों को आवलिका, मुहूर्त, दिवस, रात्रि, मास, वर्ष, आरा आदि भागों में विभाजित करके अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी तक गणना करने का नियम है। प्रसंगवश कहा जाता है कि अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी की गणना जैनशास्त्र की ही विशेषता है ऐसा समझा जाता है; परन्तु हिन्दू पुराणसाहित्य का अवलोकन करने से ऐसी प्रतीति होती है कि यह मान्यता प्राचीन काल में भारत के सम्पूर्ण आर्यक्षेत्र में न भी हो तो आर्यक्षेत्र के कुछ भागों में तो प्रचलित थी ही। विष्णुपुराण में एक ऐसा श्लोक मिलता है जिससे इस बात की पुष्टि होती है। प्लक्षद्वीप की वर्णना में लिखा है कि यहाँ अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी नहीं है—सब समय त्रेतायुग के समान काल रहता है। वह श्लोक यह है:

तः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्ज्जनपदास्तु ते।
अपसर्पिणी न तेषां वै नचैवोत्सर्पिणी द्विज ॥

—विष्णुपुराण, २।४।१३

दूसरे मत से यह कहा जाता है कि जैसे जीव व पुद्गल की गति-स्थिति में सहायक रूप से धर्मास्तिकाय व अधर्मास्तिकाय माने जाते हैं वैसे ही जीवाजीव के पर्याय परिणमन के निमित्त कारण रूप से कालद्रव्य भी मानना चाहिये। इस मत से कालद्रव्य मनुष्य क्षेत्र-व्यापी है व सूर्य चन्द्रादि ज्योतिष्कगणों की सहायता से समस्त द्रव्यों के पर्याय-परिवर्तन में निमित्तभूत होते हैं। काल को मनुष्य-क्षेत्र-परिमित कहने का हेतु यह है कि मनुष्यक्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) तक ही ज्योतिष्क देव गतिशील हैं। जब ज्योतिष्कों की गति की सहायता से ही काल परिवर्तन किया करते हैं तब मनुष्यक्षेत्र व्यापी ही मानना युक्तियुक्त होगा क्योंकि मनुष्य-क्षेत्र के आगे ज्योतिष्कों में गति नहीं है। काल मनुष्यक्षेत्र परिमित होकर भी सम्पूर्ण लोक में परिवर्तन की क्रिया करता है। एक 'समय' मात्र ही काल है और वही वर्तमान काल है। पूर्व के अतीतकाल के 'समय' का अस्तित्व विलुप्त हो गया और अनागत काल का अस्तित्व वर्तमान है ही नहीं ; अतएव अतीत व अनागत काल की गणना व्यावहारिक मात्र ही है।

तीसरा मत यह है कि काल सत्तासम्पन्न द्रव्य है, सम्पूर्ण लोक में अवस्थित व अणुपरिमित। लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में एक कालाणु रहता है, वह स्थिर है। ऐसे कालाणु संख्या में असंख्य हैं। वे अपने स्थान में ही रहते हैं किन्तु परस्पर मिलित होकर इनका स्कन्ध नहीं होता इसलिये इन्हें अस्तिकाय नहीं कहा जाता। इस काल अणु में भी पर्याय प्रवाह चलता रहता है और इस एक-एक पर्याय को एक-एक 'समय' कहा गया है। कालाणु की पर्यायें समस्त द्रव्यों में परिवर्तन लाने में सहायभूत होती हैं। प्रत्येक कालाणु में अनन्त 'समय' रूप पर्यायों का प्रवाह उत्पन्न हुआ है व ऐसी अनन्त पर्यायें होती रहेंगी। काल अरूपी व अचेतन वर्तना लक्षणयुक्त अर्थात् दूसरे द्रव्यों के पर्याय परिवर्तन में निमित्तरूप से प्रवर्तित होने की शक्ति सम्पन्न है।

भागवतपुराण में कालद्रव्य का अणु परिमाण होने का व ज्योतिष्कों की गति से उपलक्षित होने का आशय निकलता है, यथा :

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।
सतोऽविशेषभुग् यस्तु स कालः परमो महान्॥

—श्रीमद् भागवत, ३।११।४

अर्थात् जो काल जगत् प्रपञ्च का परमाणु सदृश सूक्ष्मतम अवस्था को व्याप के रहता है वह काल परमाणु है और जो काल अविशेष अर्थात् प्रपञ्च का सम्पूर्ण अवस्था व्याप के रहता है वह काल परम महान् अर्थात् सम्वत्सरादि आत्मक काल है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

मृत्यु के पश्चात् मरुदेव द्वीपकुमार और श्रीकान्ता नागकुमार देवलोक में उत्पन्न हुईं।

मरुदेव के पश्चात् राजा नाभि युगलियों के सप्तम् कुलकर हुए। वे भी उपर्युक्त तीन नीतियों से युगलियों को दण्ड देने लगे।

तृतीय आरे का जब चौरासी लाख पूर्व और उन्यासी पक्ष बाकी था तब आषाढ़ कृष्णा चतुर्दशी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में चन्द्रयोग आने पर वज्रनाभ का जीव तैंतीस सागरोपम आयु पूर्णकर सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर हंस जैसे मानसरोवर से गंगातट पर जाता है उसी प्रकार कुलकर नाभिपत्नी मरुदेवी के गर्भ में प्रवेश किया। उस समय मुहूर्त्त भर के लिए प्राणीमात्र के दुःख का उच्छेद हुआ। अतः तीनों लोक में सुख और उद्योत का प्रकाश हुआ।

जिस रात्रि में भगवान च्युत होकर माता के गर्भ में प्रविष्ट हुए उस रात्रि में प्रासाद में प्रसुप्त मरुदेवी ने चौदह महा स्वप्न देखे।

प्रथम स्वप्न में उन्होंने उज्ज्वल स्कन्धयुक्त, दीर्घ और सरल पुच्छ विशिष्ट, सुवर्ण घण्टिका पहने हुए विद्युतसह शरत्कालीन मेघ-सा वृषभ देखा।

द्वितीय स्वप्न में श्वेतवर्ण, क्रमशः उन्नत, निरन्तर प्रवहमान मदधारा से रमणीय, संचरमान कैलाश पर्वत तुल्य, चार दन्त युक्त हस्ती देखा।

तृतीय स्वप्न में पीतचक्षु, दीर्घ जिह्वा, चपल केशरयुक्त, वीर की जय ध्वजा सी पुच्छ उल्लंफनकारी केशरी देखा।

चतुर्थ स्वप्न में कमलवासिनी, पद्मानना, दिग्गज कर्त्तृक पूर्ण कुम्भ द्वारा अभिसिंचमाना लक्ष्मी देवी देखी।

पंचम स्वप्न में देवद्रुम के पुष्पों से गूँथी हुई, सरल और धनुर्धारी के आरोपित धनुष की भाँति दीर्घ पुष्पमाला देखी।

षष्ठ स्वप्न में जैसे अपने मुख का प्रतिबिम्ब और आनन्द का कारण रूप एवं कान्ति द्वारा जो दिक्‌समूह को प्रकाशित करता है ऐसा चन्द्रमण्डल देखा।

सप्तम स्वप्न में रात्रि के समय भी दिन का भ्रम उत्पन्न करने वाला, तमोनाशक, प्रसारित प्रभा सूर्य को देखा।

अष्टम् स्वप्न में चपल कर्ण से हस्ती जिस प्रकार शोभा पाता है उसी प्रकार घण्टिका पंक्ति से समृद्ध और आन्दोलित पताका शोभित महाध्वजा देखी।

नवम् स्वप्न में विकसित पद्म से अर्चित मुखवाला, समुद्र मन्थन से निकले हुए सुधापात्र की तरह जलपूर्ण सुवर्ण कलश देखा।

दशम स्वप्न में आदि अर्हत् की स्तुति के लिए भ्रमर गुंजित कमल रूप बहुमुख से स्तुति करते हुए कमल सरोवर को देखा।

ग्यारहवें स्वप्न में पृथ्वी व्याप्त शरत्कालीन अभ्रमाला की भाँति उत्क्षिप्त तरंग से चित्त को आनन्द प्रदानकारी क्षीर समुद्र देखा।

द्वादश स्वप्न में भगवान देव शरीर में जहाँ निवास करते थे उस स्नेहवश आए हुए कान्तिमय देव विमान को देखा।

तेरहवें स्वप्न में जैसे नक्षत्र समूह को एकत्रित किया गया हो ऐसा निर्मल कान्ति विशिष्ट रत्न पुंज देखा।

चौदहवें स्वप्न में त्रिलोक व्याप्त तेजस पदार्थ को एकत्रित कर द्युति-सी प्रकाशमान निर्धूम अग्नि को मुख में प्रवेश करते देखा।

रात्रि के अन्त में स्वप्न देखने के पश्चात् कमलवदना मरुदेवी कमलिनी की भाँति जाग्रत हुई। आनन्द जैसे हृदय में समा नहीं रहा है इस प्रकार स्वप्न में देखे हुए समस्त विषय को कोमल अक्षरों में वर्णन कर नाभिराज को सुनाया। नाभिराज ने अपने सरल स्वभाव के अनुसार स्वप्न विचार कर प्रत्युत्तर दिया—"तुम्हारे उत्तम कुलकर पुत्र होगा।"

उसी समय इन्द्रों का आसन कम्पायमान हुआ जैसे वह यह कहना चाहता हो 'देवी, आपने जो यह सोचा कि केवल उत्तम कुलकर पुत्र होगा यह अनुचित है।' हमलोगों का आसन क्यों कम्पायमान हुआ? ऐसा सोचकर इन्द्रों ने उपयोग बल से उसका कारण जाना। पूर्वकृत संकेतानुसार मित्र जिस प्रकार एक स्थान में एकत्रित होते है उसी प्रकार वे एकत्रित होकर स्वप्न के अर्थ बतलाने के लिए भगवान की माता के पास आए। फिर कृतांजलि होकर विनय पूर्वक जिस प्रकार वृत्तिकार सूत्र का अर्थ स्पष्ट करता है उसी प्रकार स्वप्न फल समझाने लगे। वे बोले—

"स्वामिनी, आपने प्रथम स्वप्न में वृषभ देखा इससे आपका पुत्र मोहरूपी कर्दम में फँसे हुए धर्म रूपी रथ का उद्धार करने में समर्थ होगा। द्वितीय स्वप्न में आपने हाथी देखा इससे आपका पुत्र महान् पुरुषों का गुरु और महान

बलशाली होगा। तीसरे में सिंह देखने के कारण वह सिंह-सा धीर, निर्भय, वीर और अस्खलित पराक्रम सम्पन्न होगा। देवी, चौथे स्वप्न में आपने लक्ष्मी देखी इससे आपका पुत्र पुरुषोत्तम और त्रैलोक्य की साम्राज्य लक्ष्मी का अधिपति होगा। आपने पुष्पमाला देखी इससे आपका पुत्र पुण्यदर्शी होगा एवं समस्त लोक् उसकी आज्ञा को माला की भाँति धारण करेगा। हे जगत जननी, आपने स्वप्न में चन्द्र देखा इससे आपका पुत्र मनोहर और नेत्रों को आनन्द देने वाला होगा। आपने सूर्य देखा—इससे वह मोह रूप अन्धकार को चीर कर विश्व को आलोकित करेगा। महाध्वज देखने के कारण आपका पुत्र स्ववंश में प्रतिष्ठा-सम्पन्न और धर्म-ध्वज होगा। हे देवी, स्वप्न में पूर्ण कुम्भ देखने के कारण आपका पुत्र समस्त अतिशयों का पूर्ण पात्र अर्थात् अतिशय सम्पन्न होगा। स्वामिनी, आपने जो पद्म-सरोवर देखा इससे आपका पुत्र संसार अरण्य में पथभ्रष्ट लोगों के सन्ताप को दूर करेगा। आपने समुद्र देखा—इससे अजेय होने पर भी सब इसके निकट जाएँगे। स्वप्न में संसार में अलभ्य देव विमान देखा इससे आपके पुत्र को वैमानिक देव भी सेवा करेंगे। कान्तिमय रत्नपुंज देखने के कारण आपका पुत्र समस्त गुण रूपी रत्नों की खान होगा और आपने प्रदीप्त अग्नि देखी इससे वह तेजस्वियों के भी तेज को हरण करने वाला होगा। हे देवी, आपने जो चौदह स्वप्न देखे इससे यही सूचित होता है कि आपका पुत्र चौदह राज्यलोक का स्वामी होगा।"

इस प्रकार समस्त इन्द्रों ने स्वप्न का वर्णन किया तदुपरान्त माता मरुदेवी को प्रणाम कर अपने-अपने स्थान को लौट गए। माता मरुदेवी स्वप्न फल की व्याख्या द्वारा सींचित होकर उसी प्रकार प्रफुल्लित हो गयीं जिस प्रकार वर्षा के जल से सींचित होकर धरती प्रफुल्लित हो जाती है।

जैसे सूर्य के द्वारा मेघमाला शोभित होती है, मुक्ता के द्वारा सीप, सिंह के द्वारा पर्वत गुफाएँ, उसी प्रकार महादेवी मरुदेवी उस गर्भ को धारण कर सुशोभित होने लगीं। प्रियंगु की भाँति श्यामवर्णा होने पर भी वे गर्भ के प्रभाव से कंचनवर्णा लगने लगीं जैसे शरद् ऋतु में मेघमालाएँ कंचन वर्ण हो जाती हैं। जगत्पति उनका पयपान करेंगे इस आनन्द में उनके पयोधर उन्नत और पुष्ट हो गए। उनके नेत्र विशिष्ट प्रकार से विकसित हो गए मानो भगवान का मुख देखने के लिए वे पहले से ही उत्कंठित हो रहे हैं। उनके नितम्ब पहले से ही विस्तृत थे फिर भी वर्षाकाल बीत जाने पर नदी तट जैसे विस्तृत हो जाते हैं वैसे ही विस्तृत हो गए। उनकी गति पहले से ही

मन्थर थी किन्तु अब तो जिस प्रकार हाथी की गति मदोन्मत हो जाने पर मन्थर हो जाती है वैसी ही मन्थर हो गयी। गर्भ के प्रभाव से उनकी लावण्य-लक्ष्मी प्रभात के समय विद्वानों की बुद्धि जिस प्रकार वर्द्धित हो जाती है या ग्रीष्मकाल में जिस प्रकार समुद्रतट वर्द्धित हो जाता है उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त हो गयी। यद्यपि उन्होंने त्रैलोक्य का सारभूत गर्भ धारण किया था, फिर भी उन्हें कोई कष्ट नहीं था। गर्भवासी अरिहंतों का ऐसा ही प्रभाव होता है। धरती के अंदर जिस प्रकार अंकुर बढ़ता है उसी प्रकार माता मरुदेवी के उदर में गुप्त रीति से वह गर्भ वर्द्धित होने लगा। हिम मृत्तिका (वर्फ) से जल जिस प्रकार शीतल हो जाता है उसी प्रकार गर्भ के प्रभाव से माता मरुदेवी और अधिक विश्व-वत्सला हो गयी। गर्भ में भगवान के अवतरित होने के प्रभाव से राजा नाभिराज युगलधर्मी लोक में अपने पिता से अधिक सम्माननीय हो गए। शरद् ऋतु के योग से चन्द्र किरण जैसे अधिक प्रभा सम्पन्न हो जाती है वैसे ही कल्पवृक्ष अधिक प्रभाव सम्पन्न हो गए। जगत् में पशु और मनुष्यों के मध्य वैर शान्त हो गया कारण वर्षा ऋतु के आविर्भाव से सर्वत्र सन्ताप शान्त हो जाता है।

इस प्रकार नौ महीने साढे आठ दिन व्यतीत हो गए। चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन अर्द्धरात्रि के समय जबकि समस्त ग्रह उच्चस्थान पर और चन्द्र का योग उत्तराषाढ़ नक्षत्र पर आया तब मरुदेवी ने सुख पूर्वक युगल सन्तान को जन्म दिया। उस आनन्दवार्ता में दिक्‌समूह प्रसन्न हो उठा—स्वर्गवासी देवों की भाँति लोग आनन्द क्रीड़ा करने लगे। उपपाद शय्या पर उत्पन्न देवों की भाँति जरायु और रुधिर आदि कलंक रहित भगवान विशिष्ट शोभान्वित थे। उसी समय लोग चक्षुओं को आश्चर्यान्वित कर अन्धकारनाशी विद्युत प्रकाश की भाँति एक अलौकिक प्रकाश त्रिलोक में परिव्याप्त हो गया। अनुचरों के द्वारा दुंदुभी नादित न होने पर भी मेघमन्द्र की भाँति गंभीर शब्दकारी दुंदुभी आकाश में बजने लगी, जिससे ऐसा प्रतीत हुआ मानों स्वर्ग ही आनन्द से गर्जन कर रहा हो। उस समय जबकि नारक जीवों ने भी क्षणमात्र के लिए सुख का अनुभव किया जैसा कि कभी नहीं होता तब देवता मनुष्य तिर्यंचों ने सुखानुभव किया इसमें कहना ही क्या है? मन्द-मन्द वायु ने मृत्यु की भाँति धरती की धूल को दूर करना प्रारम्भ किया। मेघ ने वितान की रचना कर सुगन्धित वारि वर्षण किया। इससे धरती उप्त बीज की भाँति उच्छ्वसित हो गयी।

उसी समय दिक्‌कुमारियों के आसन हिल उठे। भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा

भोग मालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता ये आठों दिक् कुमारियाँ उसी मुहूर्त्त में अधोलोक में भगवान के सूतिका गृह में उपस्थित हुईं। वे आदि तीर्थंकर और तीर्थंकर माता को प्रदक्षिणा देकर कहने लगीं— "हे जगन्माता, हे जगदीप की जन्मदात्री देवी, हम आपको प्रणाम करती हैं। हम अधोलोक वासिनी आठों दिक्कुमारियाँ अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्म ज्ञात कर उनके प्रभाव से उनकी महिमा स्थापित करने के लिए यहाँ आयी हैं। इससे आप भयभीत न हों।" फिर उन्होंने ईशान कोण में जाकर एक सूतिका गृह का निर्माण किया। उसका मुख पूरब की ओर था। वह एक सौ स्तम्भ पर अवस्थित था। उन्होंने संवर्त नामक वायु प्रवाहित कर सूतिकागृह के चारों ओर एक योजन पर्यन्त को कंकर एवं कर्दम से शून्य कर संवर्त वायु को निरूद्ध किया। तदुपरान्त भगवान को नमन कर गीत गाती हुई उनके पास आकर बैठ गयीं।

इसी प्रकार आसन कम्पित होने पर भगवान का जन्म अवगत कर मेघंकरा, मेघवती, सुमेधा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिषेणा और वलाहिका नामक मेरुपर्वत अधिवासिनी आठ उर्द्धलोक की दिक्कुमारियाँ वहाँ आकर जिनेश्वर और जिनेश्वर माता को नमस्कार कर स्तुति करने लगी। उन्होंने उसी समय भाद्रमास-सा मेघ सृजन कर उससे सुगन्धित वारि-वर्षण किया। सूतिका गृह के चारों ओर एक योजन पर्यन्त धूल को इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे चन्द्रिका अन्धकार को नष्ट कर देती है। घुटनों तक पंचवर्णीय पुष्पों की वर्षा कर भूमितल को इस प्रकार सुशोभित किया जैसे अल्पना अंकित की गई हो। फिर वे तीर्थंकर भगवान का निर्मल गुणगान करती हुई आनन्द से उत्फुल्ल होकर यथा स्थान जा बैठीं।

पूर्व रुचकाद्रि निवासिनी नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना विजया, वैजयन्ती, जयंती और अपराजिता नामक आठ दिक्कुमारियाँ भी ऐसे वेगवान विमान में बैठकर वहाँ आयीं जो कि मन की गति से भी स्पर्द्धा कर सके। उन्होंने भगवान और माता मरुदेवी को नमस्कार कर अपना परिचय दिया एवं हाथों में दर्पण लेकर मंगलगीत गाती हुई पूर्व दिशा में स्थित हो गयीं।

दक्षिण रुचकाद्रि निवासिनी समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा नामक आठ दिक्कुमारियाँ मानों आनन्द ही उन्हें चलाकर ले आया हो इस प्रकार आनन्दमना वहाँ आयीं

और पूर्वागत दिक्‌कुमारियों की भाँति भगवान और उनकी माता को नमस्कार कर अपना परिचय दिया तदुपरान्त कलश लिए गीत गाती हुई दक्षिण दिशा में खड़ी हो गयीं।

पश्चिम रुचक पर्वत स्थित इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, अनवमिका, भद्रा और अशोका नामक आठ दिक्‌कुमारियाँ इतनी द्रुतगति से वहाँ आयीं मानों भक्ति में वे एक दूसरे को परास्त करना चाहती हों। वे भी पूर्व की भाँति जिनेश्वर और उनकी माता को नमस्कार कर अपना परिचय दीं और हाथों में पंखा लिए-गीत गाती हुई पश्चिम दिशा में स्थित हो गयीं।

उत्तर रुचक पर्वत से अलम्बूषा, पुण्डरीका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री और ह्री नामक आठ दिक्‌कुमारियाँ आभियोगिक देवताओं के साथ रथ में ऐसी द्रुतगति से वहाँ आयी मानों वह रथ वायु द्वारा निर्मित हो। फिर वे भगवान और उनकी माता को पहले आयी हुई दिक्‌कुमारियों की भाँति ही नमस्कार कर परिचय देकर हाथों में चँवर लिए उत्तर दिशा में स्थित हुईं।

विदिशा के रुचक पर्वत से चित्रा, चित्रकनका, सतेरा और सौत्रामनी ये चार दिक्‌कुमारियाँ वहाँ आयीं। वे पूर्वागतों की भाँति ही जिनेश्वर माता को नमस्कार कर अपना परिचय दी और हाथों में दीप लेकर ईशान आदि विदिशा में गीत गाती हुई खड़ी हो गयीं।

रुचक द्वीप से रूपा, रूपासिका, सुरूपा और रूपकावती नामक-चार दिक्‌कुमारियाँ भी उस समय वहाँ आयीं। उन्होंने भगवान की आँवलनाल को चार अंगुल परिमित रखकर काट दिया एवं आँवल को वहीं गर्त्त बनाकर उसमें गाड़ दिया। हीरा और रत्नों से उस गर्त्त को भरकर ऊपर से दुर्वाघास आच्छादित कर दी। फिर भगवान के जलगृह के पूर्व दक्षिण और उत्तर की ओर लक्ष्मी के निवास रूप कदली वृक्ष के तीन गृहों का निर्माण किया। प्रत्येक घर में अपने विमान की भाँति विशाल और सिंहासन भूषित चतुष्कोण पीठिका का निर्माण किया। फिर जिनेश्वर को हाथों की अंजलि में लेकर एवं जिनमाता को चतुर दासी की भाँति हाथों का सहारा देकर दक्षिण पीठिका में ले गयी। वहाँ सिंहासन पर बैठाकर वृद्धा संवाहिका की भाँति सुगन्धित लक्षपाक तेल उनकी देह में संवाहित करने लगी। फिर समस्त दिशाओं को सुगन्धित करने वाला उबटन उनके शरीर पर लगाया। फिर पूर्व दिक् की पीठिका पर ले जाकर निर्मल सुवासित जल से दोनों को स्नान करवाया। कषाय वस्त्र से उनका

शरीर पोंछकर गोशीर्ष चन्दन चर्चित किया और दोनों को दिव्य वस्त्र विद्युत-प्रभ अलंकारादि पहनाए। फिर भगवान और भगवान की माता को उत्तर पीठिका पर ले जाकर सिंहासन पर बैठाया। वहाँ उन्होंने अभियोगिक देवताओं को प्रेरण कर क्षुद्र हिमवन्त पर्वत से गोशीर्ष चन्दन काष्ठ मँगवाया। अरणी के दो खण्ड लेकर अग्नि प्रज्ज्वलित की और गोशीर्ष चन्दन के छोटे-छोटे टुकड़े कर उनसे होम किया। हवन शेष होने पर भस्मावशेष वस्त्र खण्ड में लेकर दोनों के हाथों में बाँध दिया। यद्यपि तीर्थंकर और तीर्थंकर माता महामहिमासम्पन्न होती है किन्तु दिक्कुमारियों का भक्तिक्रम ऐसा ही होता है। वे भगवान के कान के पास 'तुम पर्वत की भाँति आयुष्मान बनो' ऐसा कह कर प्रस्तर के दो गोलक धरती में ठोक दिए। फिर भगवान और उनकी माता को सूतिकागृह की शय्या पर सुलाकर मंगलगीत गाने लगीं।

फिर जैसे लग्न के समय सभी बाजे एक साथ बजाए जाते हैं उसी प्रकार शाश्वत घण्टे एक साथ बज उठे। और पर्वत शिखर-सा इन्द्रासन सहसा हृदय-कम्पन की भाँति काँप उठा। इससे सौधर्मेन्द्र के नेत्र क्रोध से लाल हो गए। भृकुटि चढ़ जाने के कारण उनका मुख विकटाकार हो गया और आन्तरिक क्रोध की ज्वाला की भाँति ओष्ठ स्पन्दित होने लगे। आसन को स्थिर करने के लिए उन्होंने एक पाँव उठाया और बोले—"आज किसने यमराज को आमंत्रित किया है?" फिर वीरतापूर्वक अग्नि प्रज्ज्वलित करने के लिए वायुतुल्य वज्र को पकड़ने की इच्छा की।

इस प्रकार सिंह के समान क्रुद्ध इन्द्र को देखकर जैसे मान ही मूर्त्तिमान देह धारण कर आये हों इस प्रकार उनके सेनापति विनय पूर्वक बोले—"भगवन्, जब आपके हमलोगों जैसे अनुचर हैं तब आप स्वयं कोप क्यों कर रहे हैं? हे जगत्पति, आप हमें आदेश दीजिए, हम आपके शत्रुओं को विनष्ट करें।"

तब इन्द्र ने मन को शान्त कर अवधिज्ञान के प्रयोग से प्रथम तीर्थंकर का जन्म हुआ है अवगत किया। आनन्द के आवेश में मुहूर्त्तमात्र में उनका क्रोध विगलित हो गया। वर्षा के जल से दावानल निर्वापित होने पर पर्वत जिस प्रकार शान्त हो जाता है वे भी उसी प्रकार शान्त हो गए। 'धिक्कार है मुझे जो मैंने ऐसा सोचा। मेरे दुष्कृत मिथ्या हो जाएँ' ऐसा कहकर वे इन्द्रासन त्याग सात-आठ कदम आगे बढ़े, फिर श्रद्धांजलि मस्तक पर लगाकर मानों दूसरा रत्न-मुकुट ही उन्होंने धारण कर लिया हो जमीन पर मस्तक रखकर भगवान को नमस्कार कर रोमांचित होकर इस प्रकार स्तुति करने लगे—

"हे तीर्थनाथ, हे जगत्त्राता, हे कृपारस सिन्धु, हे नाभि-नन्दन, आपको नमस्कार। हे नाथ, नन्दन आदि उद्यानों से जैसे मेरुपर्वत सुशोभित होता है उसी प्रकार आप भी मति, श्रुत और अवधिज्ञान से शोभायमान हैं क्योंकि ये तीनों आपको गर्भ से ही प्राप्त हैं। हे देव, आज यह भरत क्षेत्र स्वर्ग से भी अधिक अलंकृत हो गया है। हे जगन्नाथ, आपका जन्म कल्याणक महोत्सव धन्य है। आज का दिन जब तक मैं संसार में हूँ तब तक आपकी ही भाँति वन्दनीय है। आज आपके जन्म पर्व में उन नारक जीवों को भी सुख प्राप्त हुआ है। अर्हतों का जन्म किसके सन्ताप को दूर नहीं करता? इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में प्रोथित सम्पत्ति की भाँति धर्म नष्ट हो गया है। उसे आप अपने प्रभाव से बीज रूप में पुनः अंकुरित करें। भगवन्, अब आपके चरणों का आश्रय लेकर कौन संसार सागर को अतिक्रम नहीं करेगा? कारण नौका के साहचर्य से लौह भी समुद्र अतिक्रम कर जाता है। आप भरतक्षेत्र में लोगों के पुण्योदय से ही अवतरित हुए हैं। यह वृक्षहीन प्रदेश में कल्पवृक्ष के उद्गम और मरु प्रदेश में नदी प्रवाहित होने जैसा है।"

प्रथम देवलोक के इन्द्र इस प्रकार भगवान की स्तुति कर अपने सेनापति नैगमेषी नामक देवता को बोले—"जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में भरत क्षेत्र के मध्य भू-भाग में नाभि कुलकर के गृह लक्ष्मी की भाँति वैभव सम्पन्ना मरुदेवी के गर्भ से प्रथम तीर्थंकर का जन्म हुआ है। उनके जन्म स्नात्र के लिए समस्त देवताओं को एकत्रित करो।"

इन्द्र की आज्ञा प्राप्त कर एक योजन विस्तृत और अद्भुत ध्वनिकारी सुघोष नामक घण्टे को उन्होंने तीन बार बजाया। इससे अन्य विमानों के घण्टे भी उसी प्रकार बजने लगे जैसे मुख्य गीतकार के पीछे अन्य गीतकार गाना प्रारम्भ करते हैं।

उन सब घण्टों के शब्द दिशा-दिशा में प्रतिध्वनित होकर इस प्रकार बजने लगे जैसे कुलवान पुत्र से कुल की वृद्धि होती है। बत्तीस लक्ष विमानों में ध्वनित होकर वे शब्द प्रतिध्वनि के अनुरणन से शतगुणा वृद्धि को प्राप्त हुए। देवतागण प्रमाद ग्रस्त थे अतः उस शब्द को सुनकर मूर्च्छित हो गए। मूर्च्छा टूटने पर वे सोचने लगे अब क्या होगा? सजग देवताओं को सम्बोधित कर तब सेनापति मेघमन्द्र स्वर में बोले—"देवगण, अनलंघनीय शासक इन्द्र, देवी आदि परिवार सहित आपको आदेश देते हैं कि जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में भरत क्षेत्र के मध्य भाग में कुलकर नाभिराज के कुल में आदि तीर्थंकर का जन्म

हुआ है। उनका जन्म कल्याणक उत्सव मनाने के लिए हमारी तरह आप भी शीघ्र प्रस्तुत हो जाइए कारण ऐसा उत्तम अवसर और नहीं है।"

सेनापति का यह कथन सुनकर भगवान की भक्तिवश कुछ देवता हवा के सम्मुख मृग की भाँति धावित हुए या चुम्बक जैसे लौह को आकृष्ट करता है उसी प्रकार आकृष्ट होकर चले। कुछ देव इन्द्र के आदेश वश चले। अन्य कुछ देव देवांगनाओं द्वारा उत्साहित होकर नदी प्रवाह में जिस प्रकार जल-जन्तु बहते हैं उसी प्रकार प्रवाहित हुए। कुछ देव पवन के आकर्षण से जैसे सुगन्ध विस्तृत होती है उसी प्रकार मित्र बान्धवों के आकर्षण से चले। इस प्रकार समस्त देवता अपने सुन्दर विमानों या अन्य वाहनों से आकाश को स्वर्ग की भाँति सुशोभित कर इन्द्र के निकट आए।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती || मार्च-अप्रैल १९८२

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'चोर हो तो ऐसा हो' (वीरेन्द्र कुमार जैन), 'समाज में सम्यक्त्व की समस्या' (चाँदमल बावेल), 'श्रवण बेलगोल और गंगवंशीय नरेश' (डा० भागचन्द जैन), 'ब्रह्मचर्य की नव पगडण्डियाँ' (श्री ज्ञान मुनि), 'भगवान महावीर और आज की समस्याएँ' (राजकुमार जैन), 'भगवान महावीर' (सौभाग्य चन्द्र पारख) ।

कथालोक || अप्रैल १९८२

इस अंक में है जैन कथा 'जयाचार्य की भूल : भूल की पीड़ा' (राजेन्द्र नगावत), 'अमर कुमार का बलिदान' (नैनमल सुराना) ।

कुशल-निर्देश || अप्रैल १९८२

इस अंक में है 'योगीन्द्र युगप्रधान सद्‌गुरु श्री सहजानंदघनजी महाराज का श्री आनन्दघन जी विजय को दिया पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'पल्लू में दो जैन प्रतिमाओं की घोर अशातना' (अगरचन्द नाहटा), 'छः धर्म कथाएँ' (पं० धीरजलाल टोकरसी साह, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'भक्तामर-स्तोत्र हिन्दी पद्यानुवाद' (भँवरलाल नाहटा) ।

जिनवाणी || अप्रैल १९८२

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'करुणा सागर महावीर' (सुन्दरलाल वी मल्हारा), 'विभिन्न धर्मों के संदर्भ में अहिंसा' (गिरवर प्रसाद विस्सा), 'Lord Mahavir and National Character' (Dr. Narendra Bhanawat).

जैन सिद्धान्त भास्कर । Jaina Antiquary || दिसम्बर १९८१

इस अंक में है 'सम्यक्त्व कौमुदी कथा और उसके कर्त्ता' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'सूत्र कृतांग में चर्चित मौलिक जैन सिद्धान्त' (डा० रामजी राय), 'आचार्य समन्तभद्र और आज का समाज' (बृज किशोर पाण्डेय), 'षट्‌त्रिंशका या षट्‌त्रिंशतिका' (अनुपम जैन), 'धूर्त्ताख्यान प्राकृत व्यंग्य काव्य' (श्री रंजन सूरिदेव), 'हिन्दी के नाटकों में तीर्थंकर महावीर' (डा० लक्ष्मीनारायण दूबे), 'भोजपुर प्रमण्डल एवं आरा नगरी में जैन समुदाय का इतिहास' (सुबोध कुमार जैन), 'सम्राट श्रेणिक, मगध और पंचशील' (गणेश प्रसाद जैन), 'Bhagawan

Gommatesh and Shravana Belagola' (Dr. Jyoti Prasad Jain), 'Bahubali : A perspective' (Dr. J. P. Bhomaj), 'The Concept of Ahimsa' (Dr. P. C. Jain), 'Note on the Individuality of the Jaina Art' (R. Nath), 'Theories Regarding the Date of Mahavira's Nirvana' (Binod Kumar Tiwari), 'Jaina Authors and their Works' (Dr. Jyoti Prasad Jain).

श्रमण || अप्रैल १९८२

इस अंक में है 'महावीर के सिद्धान्त युगीन सन्दर्भ में' (डा० सागरमल जैन), 'क्रान्तदर्शी महावीर' (उपाध्याय श्री अमर मुनि), 'दुर्दान्त दस्यु दया का देवता बना' (वीरेन्द्र कुमार जैन), 'भगवान महावीर और युवा अध्यात्म' (जमनालाल जैन), 'अकबर और जैन धर्म' (डा० ओमप्रकाश सिंह), '४५ आगम और मूल सूत्र की मान्यता पर विचार' (अगरचन्द नाहटा), 'संस्कृत दूत काव्यों के निर्माण में जैन कवियों का योगदान' (रविशंकर मिश्रा), 'विदेशों में जैन साहित्य अध्ययन और अनुसन्धान' (डा० भागचन्द 'भास्कर'), 'ज्ञान प्रामाण्य और जैन दर्शन' (भिखारी राम यादव)।

Vol. VI No. 1 : Titthayara : May 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD
CALCUTTA-700001